

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' एवं मृदुला सिन्हा कृत 'सीता पुनि बोली' में सीता चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन

नीलम गर्ग

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
(उत्तर प्रदेश) E-mail: <drneelamgarg7@gmail.com>

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' एवं मृदुला सिन्हा के उपन्यास 'सीता पुनि बोली' में चित्रित सीता-चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों रचनाएँ भिन्न युगों एवं भिन्न रचनात्मक दृष्टियों से सम्बद्ध होते हुए भी सीता को भारतीय सांस्कृतिक चेतना के महत्वपूर्ण स्त्री-प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत करती हैं। 'रामचरितमानस' में सीता का व्यक्तित्व दैवी गरिमा, पतिव्रत, दाम्पत्य-निष्ठा, त्याग, धैर्य, मर्यादा एवं सतीत्व से निर्मित होता है। वनगमन के प्रसंग में उनका कर्तव्य-बोध एवं राम के प्रति प्रेम, रावण के सम्मुख उनका आत्मबल तथा अग्निप्रवेश में अपने सत्य के प्रति अटूट विश्वास उनके दृढ़ व्यक्तित्व को प्रमाणित करते हैं। इसके विपरीत 'सीता पुनि बोली' में मृदुला सिन्हा पारम्परिक सीता-प्रतिमा को आधुनिक स्त्री-चेतना के सन्दर्भ में पुनर्परिभाषित करती हैं। यहाँ सीता केवल आदर्श पत्नी या त्यागमयी नारी नहीं, बल्कि अपने जीवनानुभवों पर विचार करने वाली, प्रश्न करने वाली तथा अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति देने वाली आत्मचेतन स्त्री के रूप में सामने आती हैं। शोध में विशेष रूप से यह स्पष्ट किया गया है कि 'रामचरितमानस' की कथा-सीमा एवं 'सीता पुनि बोली' के कथा-विस्तार में महत्वपूर्ण अन्तर है। मानस में कथा राम-सीता के राज्याभिषेक एवं रामराज्य की स्थापना के साथ पूर्ण होती है, जबकि मृदुला सिन्हा सीता के उत्तरवर्ती जीवन, उनके संघर्ष, मातृत्व एवं आत्मस्वर को केन्द्र में लाती हैं। इस प्रकार 'सीता पुनि बोली' तुलसी की सीता का खण्डन नहीं करती, बल्कि उनके चरित्र के उन मानवीय एवं आत्मचेतन पक्षों को विस्तार देती है, जिन्हें आधुनिक स्त्री-दृष्टि से पुनः देखने की आवश्यकता अनुभव होती है। तुलनात्मक अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि दोनों सीताओं में प्रेम, निष्ठा, सतीत्व, धैर्य एवं आत्मगौरव की मूल चेतना समान है; अन्तर उनकी अभिव्यक्ति एवं युगबोध में है। तुलसी की सीता मर्यादा के भीतर अपनी शक्ति को व्यक्त करती हैं, जबकि मृदुला सिन्हा की सीता उसी मर्यादा के भीतर अपने अनुभवों को स्वर प्रदान करती हैं। इस प्रकार, सीता का चरित्र परम्परा एवं आधुनिकता के बीच एक जीवन्त सेतु के रूप में स्थापित होता है।

प्रमुख शब्द

[सीता, रामचरितमानस, सीता पुनि बोली, स्त्री-अस्मिता, पातिव्रत्य, आत्मचेतन, दाम्पत्य-चेतना, सतीत्व, आत्मचेतना, आत्मस्वर, मुखर, स्वाभिमानी।]

Centre For Studies of National Development, Meerut

Editorial Office : D-59, Shastri Nagar, Meerut - 250 004 (INDIA)

Ph. : 0121-2763765, +91-9997771669, +91-9412200765

6

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' एवं मृदुला सिन्हा कृत 'सीता पुनि बोली' में सीता चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन

1. प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में नारी आदर्श की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों से लेकर आधुनिक साहित्य तक स्त्री को कभी शक्ति, कभी करुणा तो कभी मर्यादा के प्रतीक के रूप में देखा गया। सीता, सावित्री, अपाला, गार्गी, अहिल्या, तारा आदि आदर्श स्त्रियों के रूप में साहित्य में चित्रित नारियों की एक लम्बी शृंखला है। पर इस व्यापक परम्परा में युगों-युगों से जिस स्त्री चरित्र ने जनमानस को सर्वाधिक प्रभावित किया है—वह सीता हैं। वे केवल रामकथा की नायिका मात्र नहीं हैं, वरन् भारतीय नारी के आदर्श, त्याग, करुणा, धैर्य एवं मर्यादा की जीवन्त प्रतिमूर्ति हैं। सीता के व्यक्तित्व में पत्नी, सहधर्मिणी, पुत्री, माता, त्यागमयी नारी एवं आत्मसम्मान से सम्पन्न स्त्री—इन सभी रूपों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। इसी कारण सीता का चरित्र समय के साथ निरन्तर पुनर्पाठ एवं पुनर्व्याख्या का विषय बना रहा है। अपने युग की सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि के अनुरूप विभिन्न साहित्यकारों ने सीता चरित्र का पुनर्पाठ किया है, जिससे उनका व्यक्तित्व व्यापक एवं बहुआयामी रूप में सामने आता है। परम्परा में जहाँ उन्हें आदर्श नारी, पतिव्रता एवं मर्यादा की प्रतिमूर्ति के रूप में देखा गया, वहीं आधुनिक साहित्य ने उनके व्यक्तित्व के भीतर छिपे प्रश्न, पीड़ा, आत्मचेतना एवं स्त्री-अस्मिता को भी स्वर प्रदान किया है।

2. अध्ययन का उद्देश्य

इस शोधपत्र का उद्देश्य तुलसीकृत 'रामचरितमानस' एवं मृदुला सिन्हा कृत 'सीता पुनि बोली', दोनों रचनाओं में सीता के चरित्र की समानताओं एवं भिन्नताओं को रेखांकित करने के साथ-साथ यह देखना है कि एक ही चरित्र अलग-अलग युगों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं स्त्री-दृष्टि के अनुसार किस प्रकार नए अर्थ ग्रहण करता है। प्रस्तुत अध्ययन में सीता को केवल एक आदर्श चरित्र के रूप में नहीं, बल्कि परम्परा एवं आधुनिकता के बीच सम्वाद स्थापित करने वाली जीवन्त साहित्यिक उपस्थिति के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। वर्तमान समय में यह अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि यह केवल दो साहित्यिक कृतियों में चित्रित सीता चरित्र की तुलना नहीं है, वरन् भारतीय समाज में स्त्री की बदलती अवधारणा, सांस्कृतिक निरन्तरता एवं आधुनिक चेतना को समझने का भी माध्यम है।

3. शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत 'रामचरितमानस' एवं 'सीता पुनि बोली' को प्राथमिक स्रोत के रूप में लेकर सीता-चरित्र के विभिन्न पक्षों का अन्तर्वस्तु विश्लेषण किया गया है। सहायक सामग्री के रूप में सम्बन्धित पुस्तकों, शोध-लेखों एवं आलोचनात्मक साहित्य का उपयोग किया गया है।

4. सीता के चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन

सीता के चरित्र को भारतीय साहित्य में प्रतिष्ठित करने वाली सबसे प्रभावशाली कृतियों में गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' का विशिष्ट स्थान है। तुलसीदास ने अपने महाकाव्य में सीता को दिव्य,

पतिव्रता एवं मर्यादा का आदर्श रूप प्रदान किया है, जहाँ वे धर्म एवं मर्यादा के उच्चतम मानकों का पालन करती हुई दिखाई देती हैं। तुलसीदास ने सीता को राम के साथ अभिन्न रूप में प्रस्तुत करते हुए उनके दाम्पत्य-प्रेम, पतिव्रत, त्याग, धैर्य एवं सतीत्व को मर्यादा के व्यापक आदर्श से जोड़ा है। वनगमन के समय सीता का दृढ़ निर्णय, रावण के सम्मुख उनका अडिग सतीत्व तथा अग्निपरीक्षा में अपने सत्य के प्रति उनका विश्वास उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता को प्रकट करता है। वहीं आधुनिक लेखिका मृदुला सिन्हा ने अपने उपन्यास 'सीता पुनि बोली' में सीता को स्वयं अभिव्यक्ति का अवसर देते हुए उन्हें एक जागरूक, आत्मचिन्तनशील, स्वाभिमानिनी एवं आत्मसम्मान से युक्त नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। इस रचना में सीता केवल सहनशील पात्र नहीं रह जातीं, वरन् अपने अनुभवों, पीड़ाओं एवं प्रश्नों के माध्यम से अपनी चुप्पी को तोड़ते हुए पाठक से एक सम्वाद स्थापित करती हैं, जो इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है। शीर्षक में प्रयुक्त 'पुनि बोली' ही इस रचनात्मक दृष्टि का संकेत देता है—अर्थात् वह सीता, जिसकी कथा सदियों से कही जाती रही, अब स्वयं अपने अनुभवों तथा अपनी दृष्टि से बोलती है। इस प्रकार, मृदुला सिन्हा का उपन्यास परम्परागत सीता-छवि को अस्वीकार करने के बजाय उसके भीतर निहित मानवीय एवं स्त्री-केन्द्रित पक्षों का आधुनिक पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है।

सीता के चरित्र की इसी बहुआयामी उपस्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र में हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर दोनों रचनाओं में सीता चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे—

4.1 सीता का दैवी एवं मानवीय स्वरूप

'रामचरितमानस' में सीता का व्यक्तित्व मूलतः दैवी स्वरूप से जुड़ा हुआ है। मानस में वे केवल जनकनंदिनी एवं राम की पत्नी ही नहीं हैं वरन् राम की शक्ति, लक्ष्मी के अवतार एवं जगत माता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। तुलसी ने मानस के बालकाण्ड में इन शब्दों में सीता जी की स्तुति की है—

‘जनक सुता जग जननी जानकी, अतिसय प्रिय करुणा निधान की

ताके जुग पद कमल मनावउँ जासु कृपा निरमल मति पावउँ।’¹

सीता स्वयंवर में जब उनकी सखियाँ सीताजी को लेकर आती हैं तब भी तुलसी जगतजननी के रूप में सीता जी का चित्रण इस प्रकार करते हैं—

‘चलीं सखी संग लै सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी।

सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगतजननी अतुलित छवि भारी।’²

वस्तुतः तुलसी ने धर्म, मर्यादा एवं त्याग की उच्चतर भाव भूमि पर सीता चरित्र का विकास किया है। वनगमन, रावण द्वारा हरण, अशोक वाटिका, अग्निपरीक्षा जैसे अनेक प्रसंगों में तुलसी की सीता का आचरण उनके दैवी एवं आदर्श स्वरूप को पुष्ट करता है। वे वनगमन के अवसर पर स्वेच्छा से राम के साथ वन जाना स्वीकार करती हैं तथा समस्त राजसी सुखों का सहज त्याग करती हैं। रावण के समक्ष भी वे अपने सतीत्व एवं आत्मगौरव से विचलित नहीं होतीं। मानस में सीता का मानवीय रूप भी उनके दैवी व्यक्तित्व के आलोक में ही प्रकाशित होता है। आदर्श एवं लोक मर्यादा की स्थापना के लिए तुलसी की सीता व्यक्तिगत दुःखों को भी सरलता एवं सहजता से अंगीकार करती है। इसके विपरीत, मृदुला सिन्हा के उपन्यास 'सीता पुनि बोली' की सीता पूजनीय देवी के रूप में नहीं वरन् सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रेम-पीड़ा, प्रश्न एवं आत्म सम्मान से युक्त जीवन्त नारी के रूप में चित्रित हुई हैं। प्रस्तुत उपन्यास में उनका मानवीय, संवेदनशील एवं आत्मचेतस स्वरूप अधिक उभरकर सामने आता है। लेखिका ने उनके जीवन की घटनाओं को उनके भीतर घटने वाली मानसिक प्रतिक्रियाओं के साथ देखा है। राजा सुधन्वा द्वारा सीता एवं शिवधनुष के लिए जनकपुरी पर आक्रमण करने पर सम्पूर्ण स्त्री जाति को सम्पत्ति की श्रेणी में होने की अनुभूति सीता को दर्द दे जाती है तथा वह इन शब्दों में अपनी मनोस्थिति प्रकट करती हैं—‘यही तो बात है। स्त्री कई मायने में पुरुष से बलवती होती है, फिर भी उसकी गिनती जड़ (धन-सम्पत्ति) एवं जमीन के साथ ही की जाती है। जिस प्रकार धन, सम्पत्ति एवं धरती के टुकड़ों के लिए दो राजाओं के बीच लड़ाइयाँ होती हैं, उसी प्रकार स्त्री के लिए भी होती हैं।’³

प्रस्तुत उपन्यास की सीता अपने निर्णयों एवं परिस्थितियों पर विचार करती हैं तथा अपने अनुभवों को स्वयं व्यक्त भी करती हैं। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में सीता के दैवीय स्वरूप को नकारा नहीं है, पर उसके भीतर छिपे मानवीय पक्ष को उभार कर उसे अधिक जीवन्त बना दिया है। कहा जा सकता है कि तुलसी की सीता में मानव जीवन दैवत्व की ओर उन्नत होता है, जबकि मृदुला सिन्हा की सीता में दैवत्व मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतरकर पाठक के निकट आता है।

4.2 सीता चरित्र में पतिव्रत एवं दाम्पत्य चेतना

'रामचरितमानस' में सीता का पातिव्रत्य उनके दाम्पत्य जीवन की आधारभूत चेतना है। राम के वनगमन का प्रसंग इसका प्रभावशाली उदहारण है। सीता राजमहल में रहकर सुख भोगने के स्थान पर राम के साथ वन जाने का दृढ़ निर्णय लेती हैं। वन के कष्टों का वर्णन सुनने के बाद भी उनका निर्णय परिवर्तित नहीं होता। वे राम को समझाती हैं कि पति से अलग रहकर उनके लिए जीवन निरर्थक है। मानस की निम्नलिखित पंक्तियाँ सीता के राम के प्रति प्रेम एवं समर्पण को अभिव्यक्त करती हैं—

‘जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।

तनु धनु धाम धरनि पुर राजु। पतिविहीन सबु सोक समाजु।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।

प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं। मो कहूँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।’⁴

उपर्युक्त पंक्तियों में पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध की अनिवार्यता व्यक्त होती है। सीता के लिए दाम्पत्य केवल सुख-सुविधाओं में साथ रहने का सम्बन्ध नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक संकट में सहभागी बनने का संकल्प है। उनका निम्नलिखित कथन उनके दाम्पत्य बोध को स्पष्ट करता है—

‘जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद बिमल बिधु बदन नु निहारे।।’⁵

वे राम के सुख में ही अपना सुख एवं राम के दुःख में ही अपना दुःख मानती हैं। इस दृष्टि से उनका वनगमन केवल पति का अनुसरण नहीं बल्कि जीवन सहचर्य की स्वीकृति है। मानस की सीता का पातिव्रत्य केवल व्यक्तिगत प्रेम नहीं है, बल्कि धर्म मर्यादा, आत्मसंयम एवं आत्मगौरव से जुड़ा हुआ आदर्श है। कहा जा सकता है कि तुलसी की सीता में कर्तव्य एवं प्रेम एक-दूसरे के पूरक हैं।

मृदुला सिन्हा के उपन्यास की सीता का पातिव्रत्य भी इसी भारतीय सांस्कृतिक आदर्श से जुड़ा है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति अधिक मानवीय एवं आत्मचेतस है। यहाँ सीता राम के प्रति अपनी निष्ठा को बनाए रखते हुए अपने दाम्पत्य के सुख, दुःख, अपेक्षाओं एवं पीड़ाओं पर भी विचार करती हैं। उनके लिए पति के प्रति समर्पण का अर्थ अपनी भावनाओं एवं अस्तित्व का पूर्ण विसर्जन नहीं है। वे प्रेम एवं निष्ठा के साथ-साथ विश्वास, सम्मान एवं भावनात्मक सहभागिता को भी दाम्पत्य का आवश्यक आधार मानती हैं। वनगमन उनके लिए केवल पत्नी धर्म का निर्वाह नहीं बल्कि अपने जीवन सहचर के साथ जीवन की कठिनाइयों को स्वयं स्वीकार करने का निर्णय है। वन गमन के प्रसंग में जब राम सीता को कोमलांगी कहकर वन जाने से रोकना चाहते हैं तब सीता दृढ़ता से राम के समक्ष अपनी बात इन शब्दों में प्रकट करती हैं—

‘मैं वीर्यशुल्का हूँ। आपकी वीरता का शुल्क। मेरे पिता ने मेरी शक्ति देखकर ही कठिन प्रण लिया था।.....वन जीवन के कष्ट आप भोग पाएँगे और मैं नहीं, ऐसा मत कहिए। स्त्री के लिए पति से ही ससुराल होती है और आपके बिना यह धन-सम्पत्ति, राज-पाट मेरे लिए जंगल से भी बढ़कर होगा। निर्णय में मुझे आपकी आज्ञा की भी जरूरत नहीं है। विवाह के समय सात फेरों और सप्तपदी के समय लिया गया एक-एक संकल्प मुझे हर पल स्मरण रहता है।’⁶

सीता के इस कथन से स्पष्ट होता है कि उनके निर्णय में केवल पत्नी धर्म नहीं बल्कि अपने दाम्पत्य को स्वयं चुनने एवं उसमें सहभागी होने की चेतना भी है। वे ऐसी पत्नी के रूप में सामने आती हैं, जो अपने जीवन

के निर्णयों को स्वयं लेना चाहती है तथा उसके परिणामों को स्वीकार करती है। वन में अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया से भेंट होने पर अनुसूया जी सीता के राम के साथ वन आने के निर्णय की अत्यन्त सराहना करती हैं तथा इन शब्दों में उनके पातिव्रत्य की प्रशंसा करती हैं—‘तुम राम को छोड़कर राजमहल में भी रह सकती थीं। तुम्हारी सासों ने ऐसा ही कहा होगा; किन्तु तुम सती नारी हो, सत पर चलने वाली। पतिपरायणा होना ही सती होना है। तुमने वनवास में भी पति का साथ दिया है। आने वाले समय में तुम नवयुवतियों के लिए आदर्श बन जाओगी। कष्ट-सहिष्णुता तुम्हारा आभूषण है। तुम दृढ़ निश्चयी दिख रही हो, विनम्रता में पगी हो, धैर्य तुम्हारा सम्बल है। ऐसी नारियाँ ही पतिव्रता होती हैं।’⁷

इस विवेचन से स्पष्ट है कि ‘सीता पुनि बोली’ की सीता ‘रामचरितमानस’ की सीता के पातिव्रत्य आदर्श को नकारती नहीं बल्कि उसके भीतर निहित स्त्री आत्मसम्मान एवं स्वत्व को स्वर प्रदान करती हैं। तुलसी की सीता में दाम्पत्य-निष्ठा का प्रधान स्वर समर्पण एवं मर्यादा है, जबकि मृदुला सिन्हा की सीता में उसी निष्ठा के साथ सम्वाद, आत्मसम्मान एवं प्रश्न करने की चेतना जुड़ जाती है। दोनों सीताओं का मूल भाव राम के प्रति अटूट प्रेम, समर्पण एवं निष्ठा है। अन्तर केवल उनकी अभिव्यक्ति एवं रचनाकार की दृष्टि का है।

4.3 रावण के सम्मुख सीता: सतीत्व एवं आत्मबल

‘रामचरितमानस’ में रावण के सम्मुख सीता का चरित्र उनके सतीत्व, आत्मबल एवं नैतिक दृढ़ता की चरम अभिव्यक्ति है। मानस के सुन्दरकाण्ड में अशोकवाटिका की सीता अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी अपने पतिव्रत से विचलित नहीं होतीं। रावण उन्हें अपने ऐश्वर्य, सामर्थ्य एवं भय के माध्यम से प्रलोभित करना चाहता है, परन्तु सीता उसके हर प्रलोभन को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करती हैं। रावण के सामने सीता की सबसे बड़ी शक्ति उनका राम के प्रति अटूट विश्वास एवं अपने सतीत्व के प्रति दृढ़ आस्था है। वे रावण को उसकी मर्यादा का बोध कराती हैं तथा यह स्पष्ट करती हैं कि किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध प्राप्त करना पुरुषार्थ नहीं है। सीता रावण से सम्वाद करते समय अपने और उसके बीच तृण रखती हैं। यह प्रतीकात्मक रूप से रावण के प्रति उनकी घृणा, दूरी एवं मानसिक अस्वीकार को व्यक्त करता है। सीता द्वारा रावण को धिक्कारते समय मानस के सुन्दरकाण्ड की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

‘तृण धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम स्नेही।

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ विकासा।

अस मन समुझ कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।

सठ सूनैं हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।’⁸

वस्तुतः रावण के प्रति उनका तिरस्कार एवं राम के प्रति उनकी निष्ठा उनके चरित्र की नैतिक ऊँचाई को स्थापित करती है। वे अपने जीवन के आधार राम की स्मृति एवं उनके प्रति अपने विश्वास को बनाये रखती हैं और रावण के सम्मुख झुकने के स्थान पर अपने चरित्र की मर्यादा को सर्वोच्च मानती हैं। तुलसी की सीता का यह रूप बताता है कि उनकी विनम्रता कमजोरी नहीं है; आवश्यकता पड़ने पर वही विनम्र नारी अत्यन्त दृढ़ एवं निर्भीक हो जाती है।

‘सीता पुनि बोली’ उपन्यास में रावण के सम्मुख सीता के इसी चरित्र को अधिक मनोवैज्ञानिक एवं आत्मसम्मानपरक धरातल पर विकसित किया गया है। यहाँ सीता की पीड़ा, भय, अकेलापन एवं मानसिक संघर्ष भी उनके दृढ़ निश्चय के साथ सामने आते हैं। इस प्रकार उनकी शक्ति केवल बाहरी प्रतिरोध में नहीं बल्कि अपने भीतर के विश्वास को बचाए रखने में दिखाई देती है। रावण के सामने उनका प्रतिरोध केवल राम के प्रति पतिव्रता का प्रमाण नहीं बल्कि अपने अस्तित्व, इच्छा एवं अस्मिता की रक्षा भी है। प्रस्तुत उपन्यास की सीता भी रावण के लुभाने, डराने, धमकाने, फुसलाने या बहकाने के हर प्रयास को विफल कर देती हैं और रावण को इस प्रकार लताड़ती हैं—‘किसने तुम्हें पण्डित बनाया? तुम तो महामूर्ख हो। राक्षस विवाह किसी की पुत्री का हरण करके किया जाता है, किसी प्रतापी पुरुष की पत्नी का हरण करके नहीं। मैंने तुम्हारी सारी गालियाँ

सुन लीं, तुम्हारे लम्पट वचन को सहन कर लिया, तुम्हारी यातनाओं को सहते हुए भी कभी आत्महत्या का विचार मेरे मन में नहीं आया—केवल इसलिए कि मुझे श्रीराम की शक्ति पर विश्वास है, वे अवश्य आएँगे। अब अधिक देर नहीं है। मुझे श्रीराम की पत्नी होने पर गर्व है। परन्तु मुझे अपनी धर्मावलम्बी सती पत्नी मंदोदरी का पति होने का अभिमान नहीं है। तुमने उनके साथ छल किया है। तुमने पति होने का धर्म नहीं निभाया। तुम नीच हो, अधम हो।'⁹

इससे स्पष्ट होता है कि तुलसी की सीता रावण को अपने सतीत्व एवं धर्म के आधार पर अस्वीकार करती हैं, जबकि मृदुला सिन्हा की सीता उसी अस्वीकार को स्त्री के आत्मसम्मान एवं अपनी इच्छा पर स्वयं के अधिकार से जोड़ती हैं। यहाँ दोनों सीताओं में मूलभूत समानता, उनकी अडिग निष्ठा एवं नैतिक दृढ़ता है। अन्तर यह है कि मानस में यह शक्ति धर्म एवं पतिव्रत की मर्यादा के रूप में अभिव्यक्त होती है, जबकि 'सीता पुनि बोली' उपन्यास में वही शक्ति, आत्मचेतना, स्वाभिमान एवं स्त्री अस्मिता का आधुनिक अर्थ ग्रहण करती है।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि रावण के सम्मुख दोनों सीताएँ बाह्य रूप से पीड़ित दिखाई देती हैं, किन्तु आन्तरिक रूप से वह पराजित नहीं होतीं। रावण का बाहुबल सीता के आत्मबल के सामने निष्प्रभावी हो जाता है। यही इस प्रसंग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। तुलसी की सीता का सतीत्व उन्हें नैतिक शक्ति प्रदान करता है और मृदुला सिन्हा की सीता का आत्मचेतन सतीत्व उसी नैतिक शक्ति को आत्मसम्मान एवं स्त्री अस्मिता से जोड़ देता है। दोनों ही रचनाओं में सीता पुरुष-सत्ता के सामने स्त्री की आन्तरिक स्वतन्त्रता एवं नैतिक विजय का सशक्त प्रतीक बनकर उभरती हैं।

4.4 अग्नि परीक्षा: मर्यादा एवं स्त्री अस्मिता

'रामचरितमानस' में अग्निपरीक्षा का प्रसंग सीता के सतीत्व, आत्मविश्वास एवं मर्यादा-बोध को सामने लाता है। लंका विजय के बाद सीता को राम के सम्मुख लाया जाता है। इस प्रसंग में तुलसीदास सीता की पवित्रता को लेकर किसी वास्तविक सन्देह की स्थापना नहीं करते। क्योंकि अरण्य कांड में ही राम सीता के वास्तविक स्वरूप को अग्नि में सुरक्षित रखने और उनके छाया रूप को बाहर रखने की बात कहते हैं—

‘सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला।

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौ निसाचर नासा।।’¹⁰

इस दृष्टि से लंका कांड की अग्निप्रवेश घटना को केवल सीता की परीक्षा मानना पर्याप्त नहीं है। यह उनके वास्तविक स्वरूप को पुनः प्रकट होने का भी प्रसंग है—‘सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी।’¹¹ अग्नि के सामने सीता स्वयं अपने सत्य पर पूर्ण विश्वास व्यक्त करते हुए कहती हैं—

‘जो मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।

तो कृसानु सब कै गति जाना। मो कहूँ होउ श्रीखंड समाना।।’¹²

यहाँ सीता किसी अपराध-बोध के साथ अग्नि में प्रवेश नहीं करतीं बल्कि अपने सत्य एवं सतीत्व के प्रति पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अग्नि को साक्षी बनाती हैं और अग्नि देव भी वास्तविक सीता को राम को उसी प्रकार समर्पित करते हैं जैसे क्षीरसागर ने विष्णु को लक्ष्मी को समर्पित किया था।

मृदुला सिन्हा ने अपने उपन्यास में अग्निपरीक्षा वाले प्रसंग को स्त्री के आत्मसम्मान एवं आत्मचेतना के व्यापक सन्दर्भ में देखा है। यहाँ सीता केवल अपनी पवित्रता सिद्ध करने वाली स्त्री नहीं हैं बल्कि अपने जीवन की घटनाओं पर विचार करने वाली चेतन व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं। उनके लिए पवित्रता किसी बाहरी प्रमाण की मोहताज नहीं है। उनका मानना है कि जब स्त्री स्वयं अपने चरित्र के सत्य को जानती है तो उसकी गरिमा का अन्तिम निर्णय किसी बाहरी कसौटी से क्यों किया जाए? मृदुला सिन्हा की सीता इस बिन्दु पर अधिक आत्मचेतन दिखाई देती हैं। वे परम्परा एवं राम के प्रति अपनी निष्ठा से विमुख नहीं होतीं, किन्तु अपने अनुभवों को समझने और उनके अर्थ पर विचार करने का अधिकार भी रखती हैं। इसीलिए अग्निपरीक्षा की बात सुनकर

उनके हृदय के भाव खोलने लगते हैं—‘अग्नि पर चलना मेरे लिए असम्भव नहीं था; पर क्यों चलूँ अग्नि पर? मैं नहीं दूँगी अग्निपरीक्षा। मैं राम के बिना लंका में अकेली रही तो राम भी तो मेरे बिना अकेले रहे? फिर मेरी ही क्यों होगी अग्निपरीक्षा? क्या मात्र इसलिए कि मैं स्त्री हूँ? मात्र इसलिए वह पुरुष के सारे अनाचार सहे? नहीं, मैं नहीं दूँगी अग्निपरीक्षा? क्यों दूँ? जीवन भर की अपनी तपस्या की कमाई क्यों न्योछावर कर दूँ?’¹³

प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट होता है कि मृदुला सिन्हा की सीता पहली बार उस सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न करती दिखाई देती हैं जिसमें स्त्री को ही अपनी पवित्रता सिद्ध करने के लिए बाध्य किया जाता है। सीता का ‘मैं नहीं दूँगी अग्निपरीक्षा’ सोचना उनके विद्रोही स्वर से अधिक उनके आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति है। वह अपने जीवन भर की तपस्या एवं चरित्र की कमाई को किसी बाहरी प्रमाण की कसौटी पर रखने से इनकार करती हैं। इस प्रकार, मृदुला सिन्हा की सीता अबला या मौन सहनशील स्त्री नहीं बल्कि अपने अस्तित्व एवं गरिमा के प्रति सजग स्त्री के रूप में सामने आती हैं। यहाँ अग्नि परीक्षा का प्रश्न केवल सीता की पवित्रता का प्रश्न नहीं रह जाता, बल्कि स्त्री से बार-बार प्रमाण माँगने वाली पुरुष प्रधान सामाजिक मानसिकता पर प्रश्न बन जाता है। यहाँ सीता समाज की उस मानसिकता को कटघरे में खड़ा करती हैं जो स्त्री के चरित्र एवं अस्तित्व का निर्णय पुरुष की स्वीकृति से करना चाहती है।

विशेष रूप से उल्लेखनीय यह है कि मृदुला जी की सीता प्रश्न तो उठाती हैं, किन्तु अग्निपरीक्षा से पीछे नहीं हटती। त्रिजटा द्वारा प्रश्न करने पर कि आपने अग्निपरीक्षा क्यों दी? सीता स्पष्ट करती हैं कि ‘मेरी अग्निपरीक्षा श्री राम के लिए भी साध्य नहीं साधन थी। उनके द्वारा मर्यादा स्थापना में एक और पग। मुझे तो हर लौकिक कार्य में भी उनका साथ देना है। पृथ्वी की पुत्री अग्नि से क्यों डरे? आपने देखा, अग्नि से मेरा कुछ नहीं बिगड़ा।’¹⁴

यहाँ सीता के स्वर में भय या विवशता नहीं बल्कि आत्मविश्वास एवं अपने सत्य के प्रति दृढ़ आस्था दिखाई देती है। वे स्पष्ट करती हैं कि उनके लिए अग्नि कोई भय का साधन नहीं बल्कि सत्य को उद्घाटित करने वाला माध्यम है। उनका अग्नि में प्रवेश उनकी दुर्बलता नहीं बल्कि अपने अस्तित्व एवं पवित्रता के प्रति उनके अडिग विश्वास का प्रतीक बन जाता है। वे समाज अथवा राम के सन्देह के सामने स्वयं को केवल सफाई देने वाली स्त्री के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि अपने सत्य को स्वयं प्रमाणित करने का निर्णय लेती हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास में अग्निपरीक्षा सीता के लिए मात्र परीक्षा न रहकर आत्मसम्मान, आत्मविश्वास एवं स्त्री की स्वायत्त चेतना की अभिव्यक्ति बन जाती है। इससे उजागर होता है कि तुलसी की सीता मर्यादा के भीतर रहकर अपने सत्य को प्रतिष्ठित करती हैं जबकि मृदुला सिन्हा की सीता उसी मर्यादा के भीतर से स्त्री की अस्मिता का स्वर मुखर करती हैं। लेखिका ने अपने उपन्यास में सीता को अबला की छवि से अलग करके एक सजग, तर्कशील एवं आत्मविश्वासी स्त्री के रूप में स्थापित किया है।

4.5 परित्याग एवं लोकापवाद: मानस की कथा-सीमा एवं ‘सीता पुनि बोली’ का विस्तार

‘रामचरितमानस’ में सीता के लोकापवाद के कारण पुनः वन भेजे जाने की कथा नहीं मिलती। तुलसीदास ने उत्तरकांड में रामराज्य की स्थापना एवं सीता-राम के सुखमय जीवन को प्रमुखता दी है तथा कथा का समापन राम के राज्याभिषेक एवं उनके आदर्श शासन के चित्रण के साथ किया है। अतः तुलसी की सीता को परित्यक्ता के रूप में चित्रित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। मानस में सीता की प्रतिष्ठा राम के साथ उनके दाम्पत्य, सतीत्व एवं मर्यादा के सन्दर्भ में स्थापित होती है; लोकापवाद के कारण उनके परित्याग का प्रसंग तुलसी की कथा-योजना का हिस्सा नहीं है। मानस की सीता का चरित्र एक ऐसी स्थिति पर पूर्णता प्राप्त करता है जहाँ वे राम के साथ अयोध्या में प्रतिष्ठित हैं। यह कथा-सीमा सीता को मुख्यतः सहधर्मिणी, पतिव्रता, सती एवं मर्यादित नारी के रूप में स्थापित करती है।

इसके विपरीत ‘सीता पुनि बोली’ में लेखिका ने सीता के जीवन की उत्तरवर्ती घटनाओं एवं उनके अन्तर्मन का विस्तार किया है। इस विस्तार के कारण सीता केवल रामकथा की सहायक पात्र न रहकर अपने

जीवन की घटनाओं की साक्षी एवं व्याख्याकार बनती हैं। परित्याग की स्थिति उनके चरित्र में एक नया आयाम जोड़ती है, क्योंकि अब प्रश्न केवल पत्नीधर्म या पतिव्रत का नहीं बल्कि उस स्त्री के अस्तित्व का है जिसे अपने निर्दोष होने के बावजूद सामाजिक दृष्टि और परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। लोकोपवाद का प्रश्न सीता के आत्ममंथन एवं आत्मचिन्तना का कारण बनता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने सीता के परित्याग को केवल एक पौराणिक घटना के रूप में न देखकर उसके मानवीय एवं स्त्री केन्द्रित पक्ष को उभारा है। यहाँ सीता की पीड़ा के साथ-साथ उनका आत्म सम्मान, मातृत्व बोध एवं जीवन के प्रति उनका नया संकल्प सामने आता है। राम से दूर होने के बाद उनके भीतर क्रोध एवं दुःख का द्वन्द्व अवश्य है, किन्तु वे टूटकर नहीं बिखरती हैं। अग्निपरीक्षा के प्रसंग को स्मरण करते हुए उनका अन्तर्मन आहत है। वे अनुभव करती हैं कि अग्नि ने तो उनका कुछ नहीं बिगाड़ा, किन्तु राम से दूरी और परिस्थितियों ने उनके भीतर जो दुःख एवं क्रोध उत्पन्न किया है, वही वास्तविक अग्नि है। परित्याग के बाद सीता के व्यक्तित्व में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन मातृत्व बोध के जागरण के रूप में दिखाई देता है। राम से अलग होने की पीड़ा के बीच भी गर्भस्थ संतान का भविष्य उनके लिए आशा का केन्द्र बन जाता है। वे नारी जीवन के उद्देश्य को नए अर्थ में अनुभव करती हैं और अपने भीतर पल रहे जीवन के भविष्य को संवारने का संकल्प लेती हैं। लेखिका ने सीता के संकल्प को इन शब्दों में वाणी दी है—‘शिशु के आगमन की प्रतीक्षा ने राम की प्रतीक्षा का स्थान ले लिया। दोनों प्रतीक्षाएँ ही थीं। पर एक में आशा, दूसरे में निराशा थी; एक में आनन्द था तो दूसरे में विषाद। मन ने आशा एवं आनन्द का ही चयन किया। गर्भ में पल रही संतान का भविष्य संवारने का संकल्प जागा था।’¹⁵ यहाँ मातृत्व सीता के लिए केवल जैविक दायित्व नहीं है, बल्कि उनके जीवन को पुनः अर्थ प्रदान करने वाली शक्ति बन जाता है। वे संतान को जन्म देने और उसके पालन पोषण के दायित्व से स्वयं को जोड़ लेती हैं। इस प्रकार परित्याग के बाद सीता का जीवन निराशा से निकलकर मातृत्व एवं कर्म की दिशा में आगे बढ़ता है। यहाँ सीता का व्यक्तित्व केवल राम की पत्नी के रूप में सीमित नहीं रहता, वह स्वयं एक माता, संस्कारदात्री एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में सामने आती हैं।

परित्याग के बाद सीता का स्वाभिमानी एवं आत्मसम्मान रूप उजागर होता है। वे स्वयं को असहाय या दया की पात्र नहीं मानती। वाल्मीकि के आश्रम में आश्रय प्राप्त करने के बावजूद उनका आत्मविश्वास अक्षुण्ण रहता है। वे स्पष्ट शब्दों में कहती हैं—‘तुम मुझे दया भाव से मत देखो। मैं अबला नहीं हूँ। मुझे किसी की सहानुभूति नहीं चाहिए।.....मैं अकेले बच्चा जनने में सक्षम हूँ।.....पुरुष को स्त्री के विशेष सम्बल की आवश्यकता होती है। स्त्रियाँ अकेली रहकर भी बच्चे का लालन-पालन कर लेती हैं, क्या पुरुष कर सकता है? नहीं!’¹⁶ प्रस्तुत कथन सीता के पारम्परिक अबला वाले रूप से आगे बढ़कर उनके समर्थ व्यक्तित्व को सामने लाता है। वे स्वीकार करती हैं कि यदि उन्हें आश्रम में आश्रय ना भी मिला होता तब भी वे वन में रहकर अपने जीवन का निर्वाह कर सकती थीं और अकेले बच्चे को जन्म देने तथा उसका पालन पोषण करने में सक्षम थीं। इस दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास की सीता परिस्थितियों का सामना करने वाली, स्वतन्त्र चेतना वाली, स्वाभिमानी एवं आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में सामने आती हैं।

हम कह सकते हैं कि ‘रामचरितमानस’ में अनुपस्थित सीता परित्याग के प्रसंग को ‘सीता पुनः बोली’ उपन्यास में आधुनिक स्त्री दृष्टि से पुनर्सृजित किया गया है। इस रचना में परित्याग सीता के जीवन की त्रासदी नहीं बल्कि उनके व्यक्तित्व के पुनर्निर्माण का बिन्दु बन जाता है, जिसे चित्रित करने में लेखिका पूर्णतः सफल हुई हैं।

4-6 मौन से मुखरता तक: सीता का आत्मस्वर

तुलसी द्वारा रचित ‘रामचरितमानस’ की सीता को सामान्यतः मौन, धैर्यशील एवं मर्यादित नारी के रूप में देखा जाता है, किन्तु उनका मौन निष्क्रियता या दुर्बलता का प्रतीक नहीं है। वे आवश्यकता पड़ने पर अपने विचार अत्यन्त स्पष्टता से व्यक्त करती हैं। वनगमन के प्रसंग में वे राम के साथ जाने का दृढ़ आग्रह रखती हैं

और वन के कष्टों की परवाह किए बिना अपना निर्णय स्पष्ट करती हैं। वन की भयंकरता एवं सीता जी की सुकुमारता के कारण जब कौशल्या जी एवं श्री राम सीता को अयोध्या में ही रहने की सीख देते हैं तब सीता विनम्रता मगर दृढ़ता से इस प्रकार अपनी बात दोनों के समक्ष रखती हैं—

‘लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं।
प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।’¹⁷

इसी प्रकार, रावण के सम्मुख वे उसके वैभव एवं धमकियों से प्रभावित नहीं होतीं तथा अपने सतीत्व एवं राम के प्रति निष्ठा को दृढ़ता से व्यक्त करती हैं। यहाँ तक कि जब रावण सीता को चंद्रहास तलवार का भय दिखाता है, तब भी वे निडरता से रावण को ललकारते हुए कहती हैं—

‘स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।’¹⁸

दरअसल मानस में सीता का व्यक्तित्व उनके सम्बन्धों—पुत्री, पत्नी, सहधर्मिणी के माध्यम से विकसित होता है। उनका आन्तरिक संसार उनके आचरण एवं सम्वादों से अनुमानित किया जाता है। पर मानस की सीता पूर्णतः मौन नहीं हैं; उनका आत्मस्वर मुख्यतः आचरण, संक्षिप्त सम्वाद, धैर्य एवं मर्यादा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। वे अपने जीवन की परिस्थितियों का विरोध उग्र भाषा में नहीं करतीं, बल्कि अपने निर्णय एवं आचरण के द्वारा अपनी दृढ़ता सिद्ध करती हैं। इसीलिए उनके मौन को भारतीय स्त्री के उस सांस्कृतिक आदर्श से जोड़कर देखा जा सकता है, जिसमें भावनाओं की तीव्रता के साथ संयम एवं मर्यादा भी महत्वपूर्ण हैं।

इसके विपरीत ‘सीता पुनि बोली’ में मृदुला सिन्हा सीता को अपनी कथा स्वयं कहने वाली स्त्री के रूप में प्रस्तुत करती हैं। यहाँ ‘बोली’ शब्द ही इस रचनात्मक परिवर्तन का संकेत देता है। सीता अब केवल दूसरों द्वारा कही गई कथा की पात्र नहीं हैं, बल्कि अपने जीवन की घटनाओं, सम्बन्धों, सुख-दुःख एवं निर्णयों को स्वयं देखने-समझने वाली चेतना हैं। वे अपने अनुभवों का आत्मविश्लेषण करती हैं और परिस्थितियों को केवल नियति मानकर स्वीकार नहीं करतीं। उनके भीतर प्रश्न उठते हैं और वे उन प्रश्नों पर विचार करती हैं। इस प्रकार, मृदुला सिन्हा ने सीता के उस अन्तर्मन को स्वर दिया है, जो पारम्परिक आख्यानों में अनेक बार संकेत रूप में ही उपस्थित रहता है, किन्तु विस्तार से व्यक्त नहीं होता। उनकी मुखरता का अर्थ यह नहीं कि वे परम्परा, राम या भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को अस्वीकार करती हैं; बल्कि वे परम्परा के भीतर रहकर अपने अनुभवों की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त करती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में सीता अपने सम्बन्धों के साथ-साथ स्वयं को एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में भी पहचानती हैं। वे अपने सुख-दुःख को केवल किसी सम्बन्ध की परिणति मानकर नहीं देखतीं, बल्कि अपने अनुभवों के अर्थ पर विचार करती हैं। यही आत्मविश्लेषण उनकी मुखरता का मूल आधार है। इसलिए मृदुला सिन्हा की सीता का ‘बोलना’ केवल शब्दों में बोलना नहीं, बल्कि अपनी दृष्टि से स्वयं को और अपने जीवन को परिभाषित करना है।

लेखिका ने उपन्यास के प्रारम्भ से ही सीता को चिन्तनशील, आत्मविश्लेषण करने वाली स्त्री के रूप में चित्रित किया है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है। राम के गले में जयमाला डालने से पूर्व सीता इस प्रकार विचार करती हैं—‘क्या अपने पिताजी के प्रण को पूरा करने के कारण ही मैं इस राजकुमार का वरण कर लूँ? क्या मैं पिताजी के राजमहल की कोई वस्तु हूँ, जिसे वे अपनी इच्छा या अपने प्रण के अनुकूल किसी को दान कर दें? मेरे हाथ बिलम गए। उस समय राम मेरी ओर ही देख रहे थे। मैंने भी आँखों में आँखें डालकर परीक्षा लेनी चाहिए। स्मरण हो आया कि राजकुमार मात्र मेरे पिता की परीक्षा में उत्तीर्ण वीर नहीं है। यह वही राजकुमार है,

जिसे पुष्प वाटिका में मैंने अपनी आँखों में बसाया। मैंने भवानी माता से उसे ही तो माँगा था। मनचाही वस्तु मिल जाने पर फिर देर कैसी?'¹⁹

प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट है कि इस प्रसंग में सीता पारम्परिक रूप से पिता के निर्णय को स्वीकार करने वाली मौन स्त्री नहीं बल्कि अपने जीवनसाथी के चयन पर स्वयं विचार करने वाली चेतनाशील नारी के रूप में सामने आती हैं। वे स्वयं से ही प्रश्न करती हैं और राम को अपने निर्णय का आधार बनाती हैं। यहाँ उनका आत्मस्वर आत्मनिर्णय एवं व्यक्तिगत इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में उभरता है।

इसी प्रकार, वनगमन के अवसर पर भी सीता अपना स्वर अनेक स्थानों पर मुखर करती हैं। राम द्वारा उन्हें वन जाने से मना करने पर और लक्ष्मण द्वारा श्री राम का ही पक्ष लेने पर सीता को महसूस होता है कि लक्ष्मण जैसे उनकी क्षमताओं को चुनौती दे रहे हैं। वे नारी को दुर्बल मानने वाली पुरुषवादी मानसिकता का प्रतिरोध करते हुए लक्ष्मण को इस प्रकार तर्कपूर्ण उत्तर देती हैं—'देवरजी सदियों से नारी को दुर्बल एवं अक्षम समझ कर ही कुछ पुरुष उसे निर्बल बनाने की भूल करते रहे हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बिना उर्मिला रह लेगी, मगर आपके भैया मेरे बिना चौदह वर्ष वन में नहीं रह सकते। मैं नहीं चाहती कि वे चौदह वर्ष विरह का जीवन जिँएँ। विरह की अग्नि में पराक्रम का पराभव हो जाता है। वन में जाकर भी उन्हें अपना पराक्रम दिखाना होगा। मैं उनके पुरुषार्थ में बाधक नहीं बनूँगी। कम-से-कम आप तो मेरा पक्ष लीजिए। मैं आपको वन जाने से रोक नहीं रही। फिर आप मुझे क्यों रोक रहे हैं?'²⁰

सीता की मुखरता सर्वाधिक उनके परित्याग के प्रसंग में उजागर होती है और उससे भी अधिक मुखर वे तब होती हैं, जब उन्हें पुनः राम के साथ सहजीवन बिताने के निर्णय पर सोचना पड़ता है। जीवन के तीसरे प्रहर में राम के साथ सहजीवन बिताने के निर्णय को सोच पाना भी उनके लिए बड़ा कठिन लगता है—'सम्भवतः इसलिए भी कि राम ने स्वयं सोने की सीता बनवा ली थी। एक निर्जीव पत्नी को वामांग में बिठाने के उपरान्त उन्हें मेरे जीवन्त व्यक्तित्व की क्या आवश्यकता? राम ने एक पत्नीव्रत का संकल्प किया था; निभाया भी। मेरे अयोध्या लौट जाने पर दो पत्नियाँ हो जाएँगी। मेरी ही आकृति क्यों ना हो, दो शरीर तो होंगे ही।.....राम ने मान लिया होगा कि मैं उनके लिए प्रस्तर हो गई होऊँगी।'²¹ और अन्ततः अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सीता धरती के सान्निध्य का वरण कर लेती हैं, पर उससे पूर्व जनसमूह के समक्ष घोषणा करती हैं—'मैं पृथ्वी-पुत्री सीता इन दोनों पुत्रों की जननी हूँ। इक्ष्वाकु वंश की ये दोनों सन्तानें उनके प्रतापी वंश को अर्पित कर मैंने अपना दायित्व पूर्ण किया। माँ के सत की घोषणा नहीं होती और परीक्षा भी नहीं। माँ तो माँ होती है। उसी के गर्भ से संतान पैदा होती है। यह सत्य है और इसीलिए मातृत्व शिव एवं सुन्दर भी है। असंख्य संतानों की माँ धरती की अंश अब मैं अपनी माँ के सान्निध्य में जाना चाहती हूँ। चलते-चलते बहुत थक चुकी हूँ, मानो शक्ति क्षीण हो गई है। पुनः शक्ति प्राप्त करने के लिए धरती ही उपयुक्त स्रोत है। मैं कुश एवं लव की जननी एवं पालनकर्तृ अपनी जननी का आलिंगन करना चाहती हूँ, उसके सत में विलीन हो जाना चाहती हूँ।'²²

इस प्रसंग में सीता की मुखरता अपने सबसे अधिक परिपक्व एवं आत्मविश्लेषी रूप में दिखाई देती है। वे राम के साथ पुनः जीवन बिताने के प्रश्न को भावुकता से नहीं बल्कि अपने आत्मसम्मान, अस्तित्व एवं पूर्व अनुभवों के आधार पर परखती हैं। इस प्रकार उनका आत्मस्वर केवल विरोध नहीं बल्कि अपने जीवन के सम्बन्ध में स्वतन्त्र निर्णय लेने की गहरी चेतना बन जाता है।

यहाँ दोनों रचनाओं के युगबोध का अन्तर भी स्पष्ट होता है। तुलसीदास के समय की काव्य-दृष्टि में मर्यादा, धर्म, कर्तव्य एवं लोकमंगल को विशेष महत्त्व प्राप्त है। इसलिए सीता की व्यक्तिगत पीड़ा भी व्यापक मर्यादा-बोध के भीतर अभिव्यक्त होती है। उनका संयम उनके चरित्र की गरिमा को बढ़ाता है। आधुनिक समय में स्त्री के व्यक्तित्व, अधिकार एवं आत्मपहचान के प्रश्न अधिक मुखर हुए हैं। मृदुला सिन्हा इसी आधुनिक संवेदना के साथ सीता की ओर लौटती हैं और उनके भीतर छिपे प्रश्नों तथा भावनाओं को अभिव्यक्ति देती हैं। इसीलिए 'सीता पुनि बोली' में सीता की मुखरता को परम्परा से विद्रोह मात्र मानना उचित नहीं होगा; यह परम्परा के भीतर स्त्री के अनुभव एवं दृष्टि को स्थान देने का प्रयास है।

इस सन्दर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि मानस की सीता का मौन एवं 'सीता पुनि बोली' की सीता की मुखरता एक-दूसरे के पूर्णतः विरोधी नहीं हैं। तुलसी की सीता के भीतर भी आत्मसम्मान एवं निर्णय-क्षमता विद्यमान है—वनगमन के समय उनका दृढ़ आग्रह एवं रावण के समक्ष उनका निर्भीक प्रतिरोध इसके प्रमाण हैं। मृदुला सिन्हा ने इसी अन्तर्निहित शक्ति को अधिक स्पष्ट आत्मस्वर प्रदान किया है। इस अर्थ में 'सीता पुनि बोली' की सीता को तुलसी की सीता के प्रतिलोम रूप में नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व के एक ऐसे पक्ष के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है जिसे रचनाकार ने अधिक मुखर बनाया है। स्पष्ट है कि 'रामचरितमानस' की सीता का मौन- धैर्य, मर्यादा एवं आचरण की भाषा है। तुलसी की सीता अपने आचरण से अपना सत्य स्थापित करती हैं, वहीं मृदुला सिन्हा की सीता अपने शब्दों के माध्यम से उस सत्य की व्याख्या भी स्वयं करती हैं। इस प्रकार 'मौन से मुखरता तक' की यात्रा सीता के चरित्र में किसी मूलभूत परिवर्तन की नहीं, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति एवं आत्मचेतना के विस्तार की यात्रा है। यही दोनों रचनाओं के बीच सम्वाद स्थापित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है।

5. निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'रामचरितमानस' एवं 'सीता पुनि बोली' में सीता का चरित्र दो अलग-अलग युगों की साहित्यिक दृष्टियों का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपनी मूल सांस्कृतिक चेतना में एक-दूसरे से गहरे जुड़ा हुआ दिखाई देता है। तुलसीदास की सीता दैवी गरिमा, पतिव्रत, दाम्पत्य-निष्ठा, त्याग, धैर्य एवं मर्यादा की प्रतिमूर्ति हैं। उनका व्यक्तित्व विपरीत परिस्थितियों में भी अपने सत्य एवं सतीत्व से विचलित नहीं होता। वनगमन में उनका प्रेम एवं सहधर्मिणी का भाव, रावण के सम्मुख उनका आत्मबल तथा अग्निप्रवेश के प्रसंग में अपने सत्य के प्रति उनका विश्वास उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता को प्रमाणित करता है। उनके चरित्र में मौन भी एक प्रकार की शक्ति है—वह ऐसा मौन है जिसमें धैर्य, आत्मगौरव एवं नैतिक दृढ़ता निहित है।

मृदुला सिन्हा की 'सीता पुनि बोली' इसी सांस्कृतिक सीता को आधुनिक संवेदना एवं आत्मचेतना के साथ पुनः प्रस्तुत करती हैं। यहाँ सीता केवल पूजनीय आदर्श नहीं, बल्कि अपने जीवन को स्वयं देखने-समझने वाली संवेदनशील स्त्री हैं। उनके अनुभवों, पीड़ा, प्रश्नों एवं आत्ममन्थन को अभिव्यक्ति मिलती है। विशेष रूप से जहाँ 'रामचरितमानस' की कथा सीता-राम के राज्याभिषेक के साथ पूर्ण होती है, वहीं 'सीता पुनि बोली' सीता के जीवन के आगे के पक्षों को सामने लाकर उनके व्यक्तित्व को विस्तृत करती है। इस प्रकार मृदुला सिन्हा की सीता तुलसी की सीता का निषेध नहीं करती, बल्कि उनके चरित्र में अन्तर्निहित मानवीय संवेदना एवं आत्मचेतना को अधिक मुखर बनाती हैं।

अन्ततः दोनों कृतियों की सीता में प्रेम, निष्ठा, सतीत्व, धैर्य एवं आत्मगौरव की मूल धारा समान है; अन्तर मुख्यतः उनकी अभिव्यक्ति एवं रचनाकारों के युगबोध में है। तुलसी की सीता मर्यादा के भीतर अपनी शक्ति को व्यक्त करती हैं, जबकि मृदुला सिन्हा की सीता उसी मर्यादा के भीतर अपने अनुभवों को स्वर देती हैं। इसलिए 'सीता पुनि बोली' को तुलसी की सीता से विच्छेद के रूप में नहीं, बल्कि सीता के चरित्र के आधुनिक पुनर्पाठ के रूप में देखना अधिक समीचीन है। एक में सीता का आदर्श रूप प्रतिष्ठित होता है, दूसरे में उसी आदर्श के भीतर छिपी स्त्री की चेतना मुखर होती है। यही दोनों कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

सन्दर्भ-सूची

1. तुलसीदास, *रामचरितमानस*, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गोरखपुर: गीता प्रेस, सम्बत 2061, पृ0सं0 24.
2. उपरिक्त, पृ0सं0 225.
3. मृदुला सिन्हा, *सीता पुनि बोली*, नई दिल्ली: विद्या विहार प्रकाशन, 2001, पृ0सं0 30.

4. तुलसीदास, **रामचरितमानस**, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गोरखपुर: गीता प्रेस, सम्वत 2061, पृ0सं0 381.
5. उपरिवत, पृ0सं0 381.
6. मृदुला सिन्हा, **सीता पुनि बोली**, नई दिल्ली: विद्या विहार प्रकाशन, 2001, पृ0सं0 83-84.
7. उपरिवत, पृ0सं0 119
8. तुलसीदास, **रामचरितमानस**, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गोरखपुर: गीता प्रेस, सम्वत 2061, पृ0सं0 706-707.
9. मृदुला सिन्हा, **सीता पुनि बोली**, नई दिल्ली: विद्या विहार प्रकाशन, 2001, पृ0सं0 145.
10. तुलसीदास, **रामचरितमानस**, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गोरखपुर: गीता प्रेस, सम्वत 2061, पृ0सं0 636.
11. उपरिवत, पृ0सं0 870.
12. उपरिवत, पृ0सं0 871.
13. मृदुला सिन्हा, **सीता पुनि बोली**, नई दिल्ली: विद्या विहार प्रकाशन, 2001, पृ0सं0 190.
14. उपरिवत, पृ0सं0 194.
15. उपरिवत, पृ0सं0 229.
16. उपरिवत, पृ0सं0 237.
17. तुलसीदास, **रामचरितमानस**, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गोरखपुर: गीता प्रेस, सम्वत 2061, पृ0सं0 381.
18. उपरिवत, पृ0सं0 707.
19. मृदुला सिन्हा, **सीता पुनि बोली**, नई दिल्ली: विद्या विहार प्रकाशन, 2001, पृ0सं0 51.
20. उपरिवत, पृ0सं0 85.
21. उपरिवत, पृ0सं0 284.
22. उपरिवत, पृ0सं0 293.

